



केन्द्र—राज्य सम्बन्धों के सन्तुलन में सर्वोच्च न्यायालय की भूमिका

हेमलता कुम्पावत

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग

स.पू.चौ.रा.महाविद्यालय, अजमेर

शोध सार

संघात्मक शासन व्यवस्था में दोहरे शासन की व्यवस्था होती है— एक केन्द्रीय और दूसरे राज्यों की। इनमें दो प्रकार की न्यायपालिका, दोहरी शासन व्यवस्था एवं दोहरी राजसत्ता एवं कानून के साथ संविधान की सर्वोच्चता विद्यमान रहती है। संघात्मक शासन व्यवस्था में दोनों स्तरों की सरकारें सह-अस्तित्व रखते हुए अपने-अपने निर्दिष्ट क्षेत्रों में एक दूसरे के हस्तक्षेप से मुक्त रह कर कर्तव्यों का पालन करती है। और विषय सूची में उल्लिखित अधिकारों का अपने दायरे में रहकर उपभोग करती है। किन्तु जब केन्द्र सरकार राज्यों की विपक्षी दलों की सरकारों को अस्थिर करने, उनके कार्यों में बाधा उत्पन्न करने का प्रयास करती है एवं राज्यपाल का उपयोग अपने एजेंट के रूप में करती है, जिसके कारण राज्यपाल विधानसभा द्वारा पारित बिलों पर हस्ताक्षर नहीं करते हैं और उन्हें लम्बित रखते हैं जिसके कारण दोनों सरकारों के मध्य तनाव उत्पन्न होता है। इसी समस्या को ध्यान में रखते हुए न्यायालय ने 2025 में निर्णय देते हुए कहा है कि राज्यपाल अनिश्चित काल तक विधान सभा द्वारा पारित बिलों को नहीं रोक सकेंगे।

संकेताक्षर — संघात्मक शासन, सत्ता, विषय सूची अधिनियम, विधानसभा

प्रस्तावना —

जब कुछ स्वतन्त्र राज्य अपने आपको अलग रखते हुए सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति हेतु संयुक्त रूप से संघ का निर्माण करते हैं, जिसमें राज्य अपने सामान्य हित के विषयों को उस केन्द्रीय सत्ता के सुपुर्द

कर देते हैं, जिसकी जिम्मेदारी सम्पूर्ण देश में शासन व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने की होती है। संघात्मक शासन व्यवस्था में दो प्रकार की शासन प्रणालियाँ पायी जाती है जिसमें प्रशासन में कुछ विशेष अधिकार केन्द्र को दे दिये जाते हैं और शेष अधिकार राज्यों को सौंप दिये जाते हैं जैसे अमरिका का संविधान। दूसरी प्रणाली के अनुसार राज्यों के अधिकार निश्चित कर दिये जाते हैं और शेष विषयों पर केन्द्रीय सरकार का अधिकार होता है। इस प्रकार केन्द्र एवं राज्यों के मध्य शक्तियों का संतुलित विभाजन किया जाता है।

भारतीय लोकतन्त्र की आधार षिला संविधान है। राज्य स्तर पर बनाई जाने वाली विधियाँ लोकतान्त्रिक प्रक्रिया का महत्वपूर्ण हिस्सा होती है। राज्य सूची में वर्णित विषयों पर राज्य सरकार कानूनों का निर्माण करती है किन्तु विधान सभा द्वारा पारित कानूनों को संवैधानिक स्वीकृति प्राप्त करने के लिये उस पर राज्यपाल की स्वीकृति आवश्यक होती है किन्तु केन्द्र सरकार के संकेत पर राज्यों में विपक्षी दलों की सरकारों को अस्थिर करने के उद्देश्य से राज्यपाल द्वारा विधेयकों को लंबित रखने, पुनर्विचार हेतु लौटाने, अस्वीकृत करने अथवा राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रखने के मुद्दे ने एक संवैधानिक बहस को जन्म दिया और इस विषय पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 2025 में न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय ने इस विषय को समकालीन परिस्थितियों में समसामयिक बना दिया है।

राज्य विधेयकों की संवैधानिक प्रक्रिया एवं प्रावधान

राज्य विधेयक से संबंधित भारतीय संविधान के अनुच्छेद 200 एवं 201 महत्वपूर्ण अनुच्छेद हैं, जो इस प्रकार हैं

अनुच्छेद 200 :- यह अनुच्छेद राज्य विधान सभा द्वारा पारित विधेयकों पर राज्यपाल द्वारा प्रदान की गई सहमति से सम्बन्धित है; यह अनुच्छेद राज्य के कानूनों पर राज्यपाल की शक्तियों को परिभाषित करते हैं। इस अनुच्छेद के अनुसार जब कोई विधेयक राज्य विधान सभा द्वारा पारित होकर राज्यपाल के पास जाता है तो राज्यपाल के पास निम्नलिखित विकल्प होते हैं –

- स्वीकृति प्रदान करना – यदि राज्यपाल विधान सभा द्वारा पारित बिल को सहमति प्रदान कर देता है तो वह कानून बन जाता है
- सहमति रोकना – राज्यपाल विधान सभा द्वारा पारित विधेयकों को रोककर रख लेता है।

- पुर्नविचार के लिए लोटाना – राज्यपाल किसी भी विधेयक को पुर्नविचार के लिए लौटा सकता है बशर्ते कि वह धन विधेयक नहीं है।
- राष्ट्रपति के लिए विधेयक को सुरक्षित रखना – राज्यपाल को यदि किसी विधेयक के सम्बन्ध में ऐसा लगता है कि कोई विधेयक संवैधानिक प्रावधानों के विरुद्ध है, तो वह उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रख लेता है।
- पुर्नविचार के पश्चात – यदि विधनसभा राज्यपाल के संशोधन को स्वीकार करने के साथ अथवा उसके संशोधन के बिना पुनः पारित करती है तो राज्यपाल को उस विधेयक पर स्वीकृति प्रदान करनी ही पड़ेगी।

अनुच्छेद 201 :- इस अनुच्छेद के तहत यदि राज्यपाल द्वारा कोई विधेयक राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है, तो उस आरक्षित विधेयक पर अंतिम निर्णय लेने की शक्ति राष्ट्रपति के पास होती है राष्ट्रपति चाहे तो उसे स्वीकृति दे सकता है अथवा अस्वीकृत कर सकता है। यह व्यवस्था राज्यहित, संवैधानिक वैधता और संघीय समन्वय को सुनिश्चित करती है।

राज्यपाल की भूमिका और विवेकाधिकार की शक्ति – राज्यपाल राज्य में राष्ट्रपति का प्रतिनिधित्व करता है इसका एक संवैधानिक पद है। कुछ परिस्थितियों में उसे विवेकाधिकार की शक्ति भी प्राप्त है किन्तु यह शक्ति असीमित नहीं है क्योंकि –

- राज्यपाल सामान्यतः मन्त्रि परिषद की सलाह पर कार्य करते हैं।
- राज्यपाल अपनी विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग सामान्यतः नहीं करके अपवाद स्वरूप ही करेंगे।
- राज्यपाल इस शक्ति का प्रयोग संविधान की मर्यादा एवं लोकतान्त्रिक मूल्यों के अनुसार ही करेंगे।

अतः राज्यपाल के विवेकाधिकार की शक्तियाँ असीमित नहीं हैं।

समकालीन परिप्रेक्ष्य और चुनौतियाँ –

यद्यपि सभी केन्द्र सरकारें राज्यपालों का उपयोग अपने राजनीति स्वार्थ सिद्धि हेतु करती आई है। गत कुछ वर्षों से यह प्रवृत्ति बहुत ज्यादा बढ़ गई है। केन्द्र सरकार विभिन्न विपक्षी दलों की राज्य सरकारों को गिराने अथवा अस्थिर करने हेतु राज्यपालों का उपयोग करने में कोई कोताही नहीं करती है। वर्तमान

परिप्रेक्ष्य में कई राज्यों में यह देखा गया है कि राज्य विधान सभा द्वारा पारित विधेयकों को राज्यपालों ने लम्बे समय तक लंबित रखा, राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रखा, राज्य सरकारों को अस्थिर करने अथवा उनके द्वारा लिए गए निर्णयों की क्रियान्विति में बाधा डालने का प्रयास किया है। वर्तमान परिदृश्य में कुछ उदाहरणों से उपर्युक्त कथन सही सिद्ध होता है। जो इस प्रकार है –

पश्चिम बंगाल के तत्कालीन गवर्नर जगदीष धनखड द्वारा ममता बनर्जी सरकार को गिराने एवं भाजपा सरकार बनाने की पुरजोर कोषिषे की गई यद्यपि वे इस कार्य में सफल नहीं हो पाए।

इसी प्रकार हिमाचल प्रदेश के 2016 के तत्कालीन राज्यपाल के. पाल. ने राष्ट्रपति शासन की मांग की जिसे स्वीकार कर लिया गया। तत्पश्चात मुख्यमंत्री हरीष रावत की याचिका पर उच्च न्यायालय ने राष्ट्रपति शासन लागू करने के आदेश को निरस्त किया एवं सर्वोच्च न्यायालय के आदेश पर राज्य सरकार को बहुमत सिद्ध करने के पश्चात पुनः बहाल किया गया।

इसी प्रकार पंजाब में आम आदमी पार्टी की सरकार द्वारा जब विधानसभा सत्र को आहूत करने हेतु प्रस्ताव भेजा गया, तो उन्होंने ऐसा करने से इन्कार कर दिया परिणामस्वरूप न्यायालय को दखल देना पड़ा। इसी प्रकार कश्मीर में महबूबा मुफ्ती की चुनी हुई सरकार को अल्पमत में होने का कारण बताकर, उन्हें बहुमत सिद्ध करने का पर्याप्त समय नहीं देकर विधान सभा को भंग कर राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश की गई।

तमिलनाडु का प्रकरण भी किसी से छिपा नहीं है वहां के तत्कालीन राज्यपाल एन. रवि पूर्व आई पी एस ने तमिलनाडु सरकार के कई महत्वपूर्ण बिलों पर हस्ताक्षर नहीं किया व विधान सभा द्वारा पुनः पारित बिलों पर भी हस्ताक्षर नहीं किये जिससे शासन कार्य बाधित होने लगा एवं मजबूरन वहां की सरकार को न्यायालय की शरण लेनी पड़ी।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि ऐसी परिस्थितियों से केन्द्र व राज्य सरकार के मध्य मतभेद उत्पन्न होते हैं। केन्द्र सरकार राज्यपाल के माध्यम से राज्यों की राजनीति में अनावश्यक हस्तक्षेप करती है एवं राज्यपाल द्वारा समय पर विधेयक पर हस्ताक्षर नहीं करने से विधायी प्रक्रिया में देरी होती है एवं शासन बाधित होता है।

न्यायपालिका की भूमिका –

चूँकि भारत एक संघात्मक शासन वाला देश है जहाँ केन्द्र एवं राज्य दोनों के अधिकारों को संविधान द्वारा निर्धारित कर दिया गया है किन्तु जब दोनों में टकराव उत्पन्न होता है अथवा एक दूसरे को अधिकारों का अतिक्रमण किया जाता है, तो इस संदर्भ में न्यायपालिका की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। राज्यपाल द्वारा विधेयक को लम्बित रखने एवं अपनी विवेकाधिकारिक शक्तियों के मनमाने प्रयोग पर नियंत्रण स्थापित करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने स्टेट ऑफ तमिलनाडु V/s गवर्नर ऑफ तमिलनाडु, 2005 सुप्रीम कोर्ट ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली के अन्तर्गत 8 अप्रैल 2025 को ऐतिहासिक निर्णय देते हुए न केवल राज्यपाल अपितु राष्ट्रपति को भी यह सलाह दी, कि वह विधानसभा द्वारा पारित बिलों में अनावश्यक देरी नहीं करें।

चूँकि संविधान में अनुच्छेद 200 एवं अनुच्छेद 2001 में निर्णय हेतु समय सीमा निर्धारित नहीं की गई थी किन्तु न्यायालय के निर्णय के अनुसार राज्यपाल पर एक महीने में विधेयक पर हस्ताक्षर करने की समय सीमा निर्धारित की गई है और राष्ट्रपति से अधिकतम तीन माह में विधेयक पर हस्ताक्षर करने की अपेक्षा भी की गई है।

सर्वोच्च न्यायालय ने तमिलनाडु प्रकरण में राज्यपाल के पास लंबित अहस्ताक्षरित बिलों को 'राज्यपाल द्वारा अनुमोदित' मान लेने के निर्देश दिये।

निष्कर्ष –

भारत एक लोकतांत्रिक देश है संघात्मक व्यवस्था होने के कारण केन्द्र एवं राज्यों को सह-अस्तित्व की भावना से कार्य करना चाहिए। दोनों में मतभेद व टकराव की स्थिति उत्पन्न नहीं हो ऐसा प्रयास किया जाना चाहिए। संवैधानिक संस्थाओं को अपने लोकतांत्रिक मूल्यों के आधार पर ही कार्य करना चाहिए। राज्यपाल को अपनी भूमिका संवैधानिक मर्यादा में रहकर निष्पक्ष एवं पारदर्शी तरीके से निर्वाहित करनी चाहिए, न कि सत्ताधारी दल के कार्यकर्ता के रूप में अपनी भूमिका निभानी चाहिए। तभी लोकतांत्रिक भारत का संघीय ढांचा मजबूत हो पाएगा।

संदर्भ सूची :-

1. डी.डी. बसू (2023) इन्ट्रोडक्शन टू द कान्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, लक्खी नक्सी प्रकाशन, नई दिल्ली।

2. जे. एन. पाण्डेय, (2024) कान्स्टीट्यूषन ऑफ इण्डिया , सेन्ट्रल ला ऑफ एजेन्सी प्रकाषन, प्रयागराज ।
3. वी.एन. शुक्ला, (2023) कान्स्टीट्यूषन ऑफ इण्डिया, ईस्टर्न बुक कम्पनी, लखनऊ ।
4. स्टेट ऑफ तमिलनाडु V/s गर्वनर ऑफ तमिलनाडु, 2005 सुप्रीम कोर्ट ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली ।
5. मिनिस्ट्री ला एण्ड जस्टिस कान्स्टीट्यूषन ऑफ इण्डिया (बेयर एक्ट) भारत सरकार, प्रकाषन विधि एवं न्याय मंत्रालय, नई दिल्ली ।
6. एम.पी. जैन, (2024) इण्डियन कान्स्टीट्यूषनल ला लक्की नक्सी प्रकाषन, नई दिल्ली ।
7. राजेन्द्र भाणावत पूर्व आईएस अधिकारी, राष्ट्रदूत न्यूज पेपर 15 अप्रैल 2025